सेठिया जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० ८८

श्री वीतरागाय नमः

गणधरवाद

(प्रथम)

प्रकाशक—

भैरोंदान जेठमल सेठिया

बीकानेर

वीर सं २४५८ } विक्रम सं १९८८ } प्रथमावृत्ति १००० { न्योछावर -)।

भूमिका

लोकोत्तर ज्ञान दर्शन आदि गुणों के गण [समूह] को धारण करने वाले और प्रवचन को सूत्र-रूप गूंथने वाले महापुरुष गणधर कहलाते हैं। गणधर प्रत्येक तीर्थंकर के समय उनके प्रधान शिष्य होते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थंकरों के गणधर इस प्रकार हैं—

(१) ऋषभदेव	चौरासी
(२) अजितनाथ	पचानवे
(३) सम्भवनाथ	एक सौ दो
(४) अभिनन्दन	एक सौ सोलह
(५) सुमतिनाथ	सौ
(६) पद्मप्रभ	एक सौ सात
(७) सुपार्श्वनाथ	पचानवे
(८) चन्द्रप्रभ	तेरानवे
(९) सुविधिनाथ	अठासी
(१०) शीतलनाथ	इक्यासी
(११) श्रेयांसनाथ	छियत्तर
(१२) वासुपूज्य	छियासठ
(१३) विमलनाथ	सत्तावन
(१४) अनन्तनाथ	पचास
(१५) धर्मनाथ	तेतालीस
(१६) शान्तिनाथ	छत्तीस
(१७) कुन्थुनाथ	पैंतीस

(१८) अरनाथ	तेतीस
(१९) मल्लिनाथ	अट्ठाईस
(२०) मुनिसुव्रत	अठारह
(२१) नमिनाथ	सत्तरह
(२२) नमिनाथ	ग्यारह
(२३) पार्श्वनाथ	दस
(२४) महावीर	ग्यारह

भगवान् महावीर के नव गण और ग्यारह गणधर थे। दो गण ऐसे थे जिनमें दो दो गणधर सम्मिलित थे। गणधरों के नाम इस प्रकार हैं-(१) इन्द्रभूति (२) अग्निभूति (३) वायुभूति (४) व्यक्त (५) सौधर्म (६) मण्डिकपुत्र (७) मौर्यपुत्र (८) अकम्पित (९) अचलभ्राता (१०) मेतार्य (११) प्रभास

गौतम गोत्रीय ग्यारहों विद्वान् भाई पहले वैदिक विद्वान् थे। वे अपने पक्ष की पुष्टि करने के लिए किस प्रकार भगवान् के पास आये थे, यह वृत्तान्त प्रसिद्ध है। यहां हम ग्यारहों के संशयों का ही उल्लेख करते हैं।

इन्द्रभूति— जीव है या नहीं?
अग्निभूति— ज्ञानावरण आदि कर्म हैं या नहीं?
वायुभूति— *शरीर और जीव एक ही है या भिन्न भिन्न?
व्यक्त— पृथिवी आदि भूत हैं या नहीं?
सौधर्म— जो इस लोक में जैसा है वह परलोक में वैसा ही रहता है या नहीं?

---

*वायुभूति को जीव के अस्तित्व में संदेह नहीं था। शरीर से भिन्न या अभिन्न होने में शंका थी।

मण्डिकपुत्र—	बंध और मोक्ष हैं या नहीं ?
मौर्यपुत्र—	देवता हैं या नहीं ?
अकंपित—	नारकी हैं या नहीं ?
अचलभ्राता—	पुण्य जब बढ़ जाता है तब सुख का कारण हो जाता है और जब घट जाता है तो वही दुःख का कारण हो जाता है, या पाप से भिन्न पुण्य अलग है ?
मेतार्य—	आत्मा की सत्ता होने पर भी परलोक है या नहीं ?
प्रभास—	मोक्ष है या नहीं ?

इन्हीं सन्देहों का भगवान महावीर ने निराकरण किया था। इनमें से आत्मा के अस्तित्व का समाधान करने वाला यह पहला गणधरवाद पाठकों के हाथों में है। प्रायः इसी पद्धति पर आगे के भाग भी तैयार हो रहे हैं जो शीघ्र प्रकाशित होंगे।

अनुवाद करते समय साधारण श्रेणी के पाठकों का ध्यान रखा गया है और जहाँ तक हो सका सरलता लाने का प्रयत्न किया है। तथापि विषय की गंभीरता और ग्रंथ की शुद्ध नैयायिक पद्धति के कारण यह आवश्यक है कि उसे ध्यान पूर्वक पढ़ा जाय। ऐसा करने से उसका रहस्य समझने में कठिनाई न होगी।

जिन मुनिराजों ने यह अनुवाद छपने से पहले देखने की कृपा की है उनके हम पुनः पुनः आभारी हैं।

अनुवादक

प्रथम गणधरवाद की

मूल गाथाएँ

जीवे तुह सदेहो पच्चक्ख ज न घिप्पइ घडो व्व ।
अच्चतापच्चक्ख च नत्थि लोए खपुप्फ व ॥ १ ॥
न य सोऽणुमाणगम्मो जम्हा पच्चक्खपुव्वय तपि ।
पुव्वोवलद्धसबधसरणाओ लिंगलिंगीण ॥ २ ॥
न य जीवलिंगसबधदरिसणमभू जओ पुणो सरओ ।
तल्लिंगदरिसणाओ जीवे सपच्चओ होज्जा ॥ ३ ॥
नागमगम्मो वि तओ भिज्जइ ज नागमोऽणुमाणाओ ।
न य कासइ पच्चक्खो जीवो जस्सागमो वयण ॥ ४ ॥

जं आगमा विरुद्धा परोप्परमओऽवि संसओ जुत्तो।
सव्वप्पमाणविसयाईओ जीवोत्ति ते बुद्धी ॥ ५ ॥
गोयम ! पच्चक्खु च्चिय जीवो जं संसयाइविन्नाणं।
पच्चक्खं च न सज्झं जह सुह दुक्खा सदेहम्मि ॥ ६ ॥
कयवं करेमि काहं वाऽहमयं पच्चया इमाओ य।
अप्पा स पच्चक्खो तिकालकज्जोवएसाओ ॥ ७ ॥
कह पडिवन्नमहंति य किमत्थि नत्थित्ति संसओ कह णु ?
सइ संसयम्मि वाऽयं कस्साहं पच्चओ जुत्तो ? ॥ ८ ॥
जइ नत्थि संसइ च्चिय किमत्थि नत्थित्ति संसओ कस्स ?
संसइए व सरूवे गोयम ! किमसंसयं होज्जा ? ॥ ९ ॥
गुणपच्चक्खत्तणओ गुणीवि जीवो घडोव्व पच्चक्खो।
घडओ वि घेप्पइ गुणी गुणमेत्तग्गहणओ जम्हा ॥ १० ॥
अन्नोऽणन्नो व गुणी होज्ज गुणेहिं, जइ नाम सोऽणन्नो।
ननु गुणमेत्तग्गहणे घेप्पइ जीवो गुणी सक्खं ॥ ११ ॥
अह अन्नो तो एवं गुणिणो न घडादओऽवि पच्चक्खा।
गुणमेत्तग्गहणाओ जीवम्मि कओ वियारोऽयं ॥ १२ ॥
अह मन्नसि अत्थि गुणी न य देहत्थंतरं तओ किंतु।
देहे नाणाइगुणा सो च्चिय तेसिं गुणी जुत्तो ॥ १३ ॥
नाणाइओ न देहस्स मुत्तिमत्ताइओ घडस्सेव।
तम्हा नाणाइगुणा जस्स स देहाहिओ जीवो ॥ १४ ॥

इय तुह देसग्गाय पच्चक्खो सव्वहा मह जीवो ।
अविहयनाणत्तणओ तुह विण्णाणं व पडिवज्ज ॥ १५ ॥
एव चिय परदेहेऽणुमाणओ गिण्ह जीवमत्थि त्ति ।
अणुवित्ति निवित्तीओ विन्नाणमय सरूव व्व ॥ १६ ॥
ज च न लिंगेहिं समं मन्नसि लिंगी जओ पुरा गहिओ ।
सग ससेण व सम न लिंगओ सोऽणुमेओ सो ॥ १७ ॥
सोऽणेगतो जम्हा लिंगेहिं समं न दिट्ठपुव्वो वि ।
गहलिंगदरिसणाओ गहोऽणुमेओ सरीरम्मि ॥ १८ ॥
देहस्स त्थि विहाया पइनिययागारओ घडस्सेव ।
अक्खाण च करणओ दडाईण कुलालो व्व ॥ १९ ॥
अत्थिदिय विसयाण आयाणादेयभावओऽवस्स ।
कम्मार इवादाणा लोए सडास लोहाण ॥ २० ॥
भोत्ता देहाईण भोज्जत्तणओ नरो व्व भत्तस्स ।
सघायाइत्तणओ अत्थि य अत्थी घरस्सेव ॥ २१ ॥
जो कत्ताइ स जीवो सज्झविरुद्धो त्ति ते मई होज्जा ।
मुत्ताइपसगाओ त न ससारिणो दोसो ॥ २२ ॥
अत्थि च्चिय ते जीवो ससयओ सोम्म थाणुपुरिसो व्व ।
ज सदिद्ध गोयम[1] त तत्थन्नत्थ वत्थि धुव ॥ २३ ॥
एव नाम विसाणं खरस्स पत्त न त खरे चेव ।
अन्नत्थ तदत्थि च्चिय एव विवरीयगाहे वि ॥ २४ ॥

अत्थि अजीवविवक्खो पडिसेहाओ घडोऽघडस्सेव ।
नत्थि घडोत्ति व जीवत्थित्तपरो नत्थिसद्दोऽयं ॥ २५ ॥
असओ नत्थि निसेहो संजोगाइपडिसेहओ सिद्ध ।
संजोगाइचउक्कं पि सिद्धमत्थंतरे निययं ॥ २६ ॥
जीवोत्ति सत्थयमिणं सुद्धत्तणओ घडाभिहाणं व ।
जेणऽत्थेण सअत्थं सो जीवो, अह मई होज्ज ॥ २७ ॥
अत्थो देहो च्चिय से तं नो पज्जायवयणभेआओ ।
नाणाइगुणो य जओ भणिओ जीवो न देहोत्ति ॥ २८ ॥
जीवोऽत्थि वओ सच्चं मव्वयणाओऽवसेसवयणं व ।
सव्वण्णुवयणओ वा अणुमयसव्वण्णुवयणं व ॥ २९ ॥
भय-राग-दोस-मोहाभावाओ सच्चमणइवाइं च ।
सव्वं चिय मे वयणं जाणयमज्झत्थवयणं व ॥ ३० ॥
कह सव्वण्णुत्ति मई जेणाहं सव्वसंसयच्छेई ।
पुच्छसु व जं न जाणसि जेण व ते पच्चओ होज्जा ॥ ३१ ॥
एवमुवओगलिंगं गोयम ! सव्वप्पमाणसंसिद्धं ।
संसारी-इयर-थावर-तसाइभेयं मुणे जीवं ॥ ३२ ॥
जइ पुण सो एगो च्चिय हवेज्ज वोमं व सव्वपिंडेसु ।
गोयम ! तदेगलिंगं पिंडेसु तहा न जीवोऽयं ॥ ३३ ॥
नाणा जीवा कुंभादउ व्व भुवि लक्खणाइभेयाओ ।
सुह-दुक्ख-बंध-मोक्खाभावो य जओ तदेगत्ते ॥ ३४ ॥

जेयोवओगलिंगो जावो भिन्नो य सो पइसरीर ।
सवआगा उक्करिसा वगरिसओ तेण तेऽणंता ॥ ३५ ॥
एगत्ते सव्वगयत्तओ न मोक्खादओ नभस्सेव ।
कत्ता भोत्ता मंता न य संसारी जहागासं ॥ ३६ ॥
एगत्ते नत्थि सुही बहुवधाउ त्ति देसनिरुउ व्व ।
बहुताबद्धत्तणओ न य मुक्को दमुमुक्को व्व ॥ ३७ ॥
जीवो तणुमेत्तत्थो जह कुंभो तग्गुणोवलम्भाओ ।
अहवाऽणुवलम्भाओ भिन्नम्मि घडे पडस्सेव ॥ ३८ ॥
तम्हा कत्ता भोत्ता बंवो मोक्खो सुहं च दुक्खं च ।
ससरणं च बहुत्ता–ऽसव्वगयत्तं सुजुत्ताइं ॥ ३९ ॥
गोयम[1] वेयपयाणं इमाण अत्थं च तं न याणासि ।
जं विन्नाणघणो चिय भूएहिंतो समुत्थाय ॥ ४० ॥
मयथासि मज्जंगेसु व मयभावो भूयसमुदउब्भूओ ।
विन्नाणमेत्तमाया भूएऽणुविणस्सइ स भुओ ॥ ४१ ॥
अत्थि न य पेच्चसण्णा जं पुव्वभवेऽभिहाणम्मुगो त्ति ।
जं भणियं न भवाओ भवतर जाइ जीवो त्ति ॥ ४२ ॥
गोयम[1] पयत्थमेवं मन्नंतो नत्थि मन्नसे जीवं ।
वक्कतरेसु य पुणो भणिओ जीवो जमत्थि त्ति ॥ ४३ ॥
अग्गिहवणाइकिरियाफलं च तो संसयं कुणसि जीवे ।
मा कुरु न पयत्थोऽयं इम पयत्थं निसामेहि ॥ ४४ ॥

विसयाणाणाऽणयणा विण्णाणघणो त्ति सव्वओ वावि ।
स भवइ भूएहिंतो घडविण्णाणाइभावेण ॥ ४५ ॥
ताइं चिय भूयाइं सोऽणुविणस्सइ विणस्समाणाइं ।
अत्थंतरोवओगे कमसो विण्णेयभावेण ॥ ४६ ॥
पुव्वावरविण्णाणोवओगओ विगम–संभवसहाओ ।
विण्णाणसंतईए विण्णाणघणोऽयमविणासी ॥ ४७ ॥
न य पेच्चनामसण्णाऽवत्थाए संपओवओगाओ ।
विण्णाणघणाभिक्खो जीवोऽयं वेयपयसिद्धो ॥ ४८ ॥
एवं पि भूयधम्मो नाणं तब्भावभावओ बुद्धी ।
तं नो तदभावम्मि वि जं नाणं वेयसमयम्मि ॥ ४९ ॥
अत्थमिए आइच्चे चंदे संतासु अग्गिवायासु ।
किंजोइय पुरिसो अप्पज्जोइ त्ति निद्दिट्ठो ॥ ५० ॥
तदभावे भावाओ भावे चाभावओ न तद्धम्मा ।
जह घडभावाभावे विवज्जयाओ पडो भिन्नो ॥ ५१ ॥
एसि वेयपयाणं न तयत्थं वियाणसि अहव सव्वेसिं ।
अत्थो किं होज्ज सुई विण्णाणं वत्थुभेओ वा ॥ ५२ ॥
जाई दव्वं किरिया गुणोऽहवा संसओ तवाजुत्तो ।
अयमेवेति न वाऽयं न वत्थुधम्मो जओ जुत्तो ॥ ५३ ॥
सव्वं चिय सव्वमयं सपरपज्जायओ जओ निययं ।
सव्वमसव्वमयं पि य विचित्तरूवं विवक्खाओ ॥ ५४ ॥

सामण्णविसेसमओ तेण पयत्थो विवक्खया जुत्तो ।
वत्थुस्स विस्सरूवो पज्जायावेक्खया सव्वो ॥ ५५ ॥
छिन्नम्मि संसयम्मि जिणेण जर–मरणविप्पमुक्केण ।
सो समणो पव्वइओ पंचहिं सह खंडियसएहिं ॥ ५६ ॥
एवं कम्माईसु वि जं सामण्णं तयं समाउज्ज
जो पुण जत्थ विसेसो समासओ तं पवक्खामि ॥ ५७ ॥

(विशेषावश्यक भाष्य गा० १५४९ से १६०५ तक)

प्रथम

गणधरवाद

(भावानुवाद)

(इन्द्रभूति के प्रश्न और भगवान् के उत्तर)

इन्द्रभूति—आत्मा के अस्तित्व (सद्भाव) को सिद्ध करने वाले हेतु मौजूद हैं और नास्तित्व (अभाव) को भी सिद्ध करने वाले हेतु विद्यमान हैं। इसलिए यह संदेह होता है कि आत्मा का अस्तित्व है या नहीं?

आत्मा के अभाव को सिद्ध करने वाले हेतु यह हैं-आत्मा नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण से उसका ज्ञान नहीं होता। जो बिलकुल अप्रत्यक्ष होता है-जिसका प्रत्यक्ष से कभी ज्ञान नहीं होता, उसका सद्भाव भी नहीं होता, जैसे आकाश के फूल का।

आकाश का फूल प्रत्यक्ष से कभी नहीं जाना जाता, इसलिए उसका अभाव है। इसी प्रकार आत्मा कभी प्रत्यक्ष से नहीं जानी जाती अतः आत्मा का भी अभाव है। जिस पदार्थ का अस्तित्व होता है वह प्रत्यक्ष से अवश्य जाना जाता है, जैसे घड़ा। अगर कोई यह कहे कि परमाणुओं का अस्तित्व तो है, मगर वे प्रत्यक्ष से कभी नहीं जाने जाते हैं तो यह ठीक नहीं। परमाणु अपने स्वरूप में भले ही न दिखाई दें किन्तु जब बहुत से परमाणु मिल कर घट आदि स्कंध रूप में परिणत हो जाते हैं, तब वे अवश्य दिखाई देते हैं किन्तु आत्मा प्रत्यक्ष से कभी नहीं देखा-जाना जाता।

आत्मा, अनुमान प्रमाण से भी नहीं मालूम होता क्योंकि वह प्रत्यक्ष द्वारा जाने हुए पदार्थ को ही जानता है। जब प्रत्यक्ष आत्मा को नहीं जान सकता तो अनुमान कैसे जान सकता है? जिसने कभी प्रत्यक्ष से अग्नि नहीं देखी वह धुँआ देखकर अग्नि का अनुमान कभी नहीं कर सकता।

आगम प्रमाण से भी आत्मा का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। जब कि प्रत्यक्ष से आत्मा को कोई जानता ही नहीं तो वह वचन से उसका कथन कैसे करेगा? अर्थात् आगम भी प्रत्यक्ष पूर्वक ही होता है। आत्मा प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय नहीं है अतः आगम प्रमाण का भी विषय नहीं।

दूसरी बात यह है कि सब आगम परस्पर विरोधी हैं। किसी के आगम आत्मा का अभाव बताते हैं और किसी के आगम सद्भाव। अतः आगमों से भी आत्मा के विषय में सन्देह

भगवान्—क्यों नहीं, होती है। मैं करता हूँ' 'मैंने किया था' 'मैं करूँगा' इत्यादि तीन काल संबंधी 'मैं' प्रत्यय होता है। यह 'मैं' कौन है? वही आत्मा। यदि आत्मा के बिना 'मैं' प्रत्यय होता तो मेज, कुर्सी, कलम, दवात इन सब को होता। लेकिन उन्हें ऐसा ज्ञान नहीं होता इससे सिद्ध है कि 'मैं' शब्द से आत्मा का ही बोध होता है, और वह प्रत्यक्ष सिद्ध है। यदि आत्मा नहीं हो तो 'मैं हूँ या नहीं' इस प्रकार का संशय कैसे उत्पन्न हो? क्योंकि संशय उसी में होता है जिसका अस्तित्व हो। बिना पदार्थ हुए उसमें संशय नहीं हो सकता। चांदी यदि कहीं पर न हो तो ऐसा संशय नहीं हो सकता कि 'यह चांदी है या नहीं।' 'मैं हूँ या नहीं' इस प्रकार का संशय तुम्हें होता है, इसलिए 'मैं' कोई वस्तु अवश्य है और वही आत्मा है।

इन्द्रभूति—आप कहते हैं कि हम जो "मैं" का ज्ञान होता है वही 'मैं' आत्मा है, किन्तु यह ठीक नहीं। यह ज्ञान तो शरीर में होता है। इसलिए शरीर से जुदा आत्मा नहीं मानना चाहिए।

भगवान्—शरीर तो मुर्दा भी है। यदि शरीर के अन्दर मैं का ज्ञान होता हो तो मुर्दे को भी 'मैं हूँ या नहीं,' ऐसा ज्ञान होना चाहिए था। मगर मुर्दे को 'मैं' ऐसा ज्ञान नहीं होता इसलिए यही मानना पड़ेगा कि शरीर से भिन्न किसी दूसरे को ही 'मैं हूँ या नहीं' ऐसा संशय ज्ञान होता है। बस, वही शरीर से भिन्न ज्ञाता आत्मा है। इसलिए यह बात भलीभांति सिद्ध

ाध गुण-गुणी हो जावें तो रूप और आकाश भी गुण गुणी हो जायेंगे। तात्पर्य यह है कि रूपी का गुण रूपी ही होता है और अरूपी का गुण अरूपी ही। ज्ञान यदि देह का गुण होता तो वह रूपी होता—अरूपी नहीं, इसलिए ज्ञान गुण का गुणी शरीर नहीं किन्तु आत्मा है।

गौतम! जब अपने स्वरूप का ही निश्चय रहा है तो पुण्य पाप, जन्म मरण, परलोक आदि किसी भी पदार्थ का निश्चय नहीं हो सकेगा।

इन्द्रभूति—आत्मा को जानने का और भी कोई उपाय है या नहीं?

भगवान्—हाँ है। जैसे घट के रूप आदि गुणों का प्रत्यक्ष जानकर घट प्रत्यक्ष से जाना जाता है इसी प्रकार आत्मा के स्मरण, जानने की इच्छा, करने की इच्छा, जीवन की इच्छा, और संशय आदि गुणों से आत्मा का प्रत्यक्ष होता है।

इन्द्रभूति—आप कहते हैं कि गुणों को प्रत्यक्ष करने से गुणी [द्रव्य] का भी प्रत्यक्ष हो जाता है। लेकिन यह कथन अनैकान्तिक है। क्योंकि हम आकाश के गुण शब्द का प्रत्यक्ष से जानते हैं पर आकाश को नहीं जानते। आप के कथन से तो आकाश भी प्रत्यक्ष से मालूम होना चाहिए।

भगवान्—तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। शब्द, आकाश का गुण नहीं है किन्तु पुद्गल का गुण है। इसलिए शब्द यदि प्रत्यक्ष से जाना जाता है तो गुणी पुद्गल भी प्रत्यक्ष से जाना जाता है। अतः हमारा कथन अनैकान्तिक नहीं है।

इन्द्रभूति—अच्छा, गुण का प्रत्यक्ष होने से गुणी का भी प्रत्यक्ष हो जाता है, ऐसा मान लें तो भी क्या लाभ हुआ ?

भगवान्—तुम गुण को गुणी से भिन्न मानते हो या अभिन्न ? यदि अभिन्न मानते हो अर्थात् गुण और गुणी दोनों एकमेक हैं, तो गुणों का ग्रहण होने से गुणी का भी ग्रहण हो जाता है यह सिद्ध हो गया। क्योंकि जो जिससे अभिन्न होता है, वह उसका ग्रहण होने से गृहीत हो हो जाता है।

यदि तुम गुणों को गुणी से भिन्न मानते हो-अर्थात् गुण और गुणी अलग अलग हैं तो गुणों का ज्ञान होने पर भी गुणी का ज्ञान नहीं होगा। ऐसी हालत में किसी भी पदार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता। फिर सिर्फ आत्मा के विषय में ही क्यों विचार कर रहे हो ? सभी पदार्थों में विचार होना चाहिए।

इन्द्रभूति—गुणी से गुण भिन्न नहीं है इसीलिए गुणों का ज्ञान होने से गुणी का ज्ञान हो जाता है। अतएव सब पदार्थों में विचार नहीं होता।

भगवान्—जब अन्य पदार्थों के गुणों को जानने से गुणी का ज्ञान हो जाता है तो आत्मा के ज्ञान आदि गुणों को जानने से आत्मा का भी ज्ञान होना मान लीजिए। एक जगह गुणों से गुणी का ज्ञान मानें और दूसरी जगह न मानें, यह उचित नहीं है।

इन्द्रभूति—आपने यह बताया है कि यदि गुण है तो गुणी भी मानना पड़ेगा। हम यह मानते हैं कि ज्ञान आदि गुणों का आधार कोई गुणी है लेकिन यह नहीं मानते कि वह गुणी

शरीर आदि से भिन्न है। बल्कि देह में ही ज्ञान आदि गुण पाये जाते हैं इसलिए उनका गुणी देह ही है। अनुमान भी मौजूद है-ज्ञान आदि गुण देह के ही हैं, क्योंकि वे देह में ही पाये जाते हैं। जो जिस में पाया जाय वह उसका ही गुण होता है, जैसे देह में पाया जाने वाला मोटापन, गोरापन, दुबलापन, आदि।

भगवान्—ऐसा न कहो। ज्ञान आदि गुण देह के नहीं हो सकते, क्योंकि देह रूपी है और चक्षु इन्द्रिय द्वारा देखी जाती है। यदि ज्ञान आदि देह के गुण मान जावें तो वे भी देह की तरह रूपी और चक्षु द्वारा ग्राह्य होने चाहिए। किंतु ज्ञान आदि गुण रूपी और चक्षु-ग्राह्य नहीं है, अतः ये देह के गुण नहीं आत्मा के गुण हैं।

इन्द्रभूति—ज्ञान आदि गुण शरीर के नहीं हैं, यह कथन तो प्रत्यक्ष से बाधित है, क्योंकि वे प्रत्यक्ष से देह में ही मालूम होते हैं।

भगवान्—ऐसा नहीं। यह प्रत्यक्ष, इस अनुमान प्रमाण से बाधित है ज्ञाता [आत्मा] इन्द्रियों से भिन्न है, क्योंकि जब इन्द्रियाँ काम नहीं करतीं, तब भी ज्ञाता के द्वारा, जाने हुए विषय का स्मरण होता है, अर्थात् इन्द्रियों के बिना भी पहले देखे या जाने हुए पदार्थ का स्मरण ज्ञान होता है। इसलिए इन्द्रियों का गुण ज्ञान है यह मानना ठीक नहीं। ज्ञान यदि इन्द्रियों का गुण होता तो इन्द्रियों के बिना नहीं हो सकता था। तात्पर्य यह है कि देवदत्त नामक पुरुष पाँच खिड़कियों में से पदार्थ को देखता है, तो भी उसके ज्ञान को खिड़कियों का गुण नहीं मान

इस अनुमान से पर के शरीर में आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

इन्द्रभूति—किसी वस्तु को अनुमान से जानने के लिए यह आवश्यक है कि उसका कोई लिंग [चिह्न] हो। जैसे अनुमान में अग्नि को जानने के लिए धुएं चिह्न का अवश्य देखना होता है। यह चिह्न भी ऐसा होना चाहिए जो उसके बिना न हो सकता हो, जैसे धुआ, अग्नि के बिना नहीं हो सकता। धुआँ अग्नि के बिना नहीं हो सकता इसी कारण धुएं से अग्नि का अनुमान किया जाता है। आप कहते हैं कि बिना जीव के इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट से निवृत्ति नहीं होती। मगर यह कैसे मान लिया जाय कि बिना जीव के ऐसा नहीं हो सकता? जैसे अग्नि को जानने के लिए अग्नि और उसके चिह्न धुएं को हम प्रत्यक्ष से देखते हैं वैसे आत्मा के किसी चिह्न को आत्मा के साथ नहीं देखते, इसलिए आत्मा का अनुमान नहीं किया जा सकता।

भगवान्—अनुमान करने के लिए लिंग [चिह्न] के साथ पदार्थ का देखा जाना, अनिवार्य नहीं है। जब किसी आदमी पर भूत सवार हो जाता है, तब वह हंसता है रोता है, गाता है हाथ पैर पटकता है। इन चिह्नों से सब अनुमान कर लेते हैं कि इसे भूत लग गया है। लेकिन क्या इन चिह्नों के साथ भूत और भूत का लगना भी प्रत्यक्ष से देखा जाता है? नहीं। बस, जैसे यहां साध्य और साधन को साथ में न देखने पर भी रोने गाने आदि से भूत लगने का अनुमान कर लिया जाता है

मानना होगा। जैसे इस वाक्य में जीव का अर्थ देह है उसी प्रकार सब जगह यही अर्थ होता है। अतएव आपके कथनानुसार 'जीव' शब्द का वाच्य मान लेने पर भी आत्मा का होना सिद्ध नहीं होता

भगवान्—ऐसा नहीं है। जीव शब्द का अर्थ शरीर नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर के पर्यायवाची शब्द अलग हैं और जीव के पर्यायवाची शब्द अलग हैं। जिनके पर्यायवाची शब्द अलग अलग होते हैं, उनके वाच्य पदार्थ भी अलग अलग होते हैं। जैसे के पर्यायवाची शब्द-'घड़ा','कलश' आदि जुदे हैं और वस्त्र के पर्यायवाची शब्द 'वसन' 'कपड़ा' 'पट' आदि जुदे हैं इसलिये घट और वस्त्र दोनों भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। इसी प्रकार देह के पर्यायवाची शरीर, 'काय', 'कलेवर' आदि अलग हैं और जीव के पर्यायवाची 'आत्मा', 'प्राणी', 'भूत' जन्तु' आदि अलग हैं —एक नहीं। 'जीव को मारता है' ऐसा मानने का कारण यह है कि जीव और शरीर साथ साथ रहते हैं। साथ साथ रहने के कारण ही ऐसा माना जाता है।

दूसरी बात यह है कि लोक में तुम्हारे कथन के विरुद्ध भी कहा जाता है। लोग कहते हैं 'जीव तो चला गया इस शरीर को जलाओ।' तुम्हारे कथनानुसार यदि जीव और शरीर को एक मान लिया जाए तो ऐसा वाक्य मानना उचित नहीं होगा क्योंकि जीव चला गया है तो उसे जलाने के लिए कहना मिथ्या है, और यदि जलाने के लिए कहा तो चला गया, कहना मिथ्या है। अतः इस वाक्य में जीव और शरीर को अलग अलग कहा गया है। तीसरी बात यह है कि जीव ज्ञान आदि गुणों से युक्त

है। क्यों गौतम ! तुम वेद के इस वाक्य का यही अर्थ समझते हो न ?

इन्द्रभूति—हाँ, मैं यही अर्थ समझता हूँ।

भगवान्—गौतम ! तुमने इस वाक्य से आत्मा का अभाव समझा है और " न ह वै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति, अशरीरं वा वसन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशत ' अर्थात् जब तक आत्मा शरीर के साथ रहता है, तब तक उसे सुख-दुःख दोनों बने रहते हैं तथा जीव शरीर से मुक्त—अशरीर हो जाता है तब सुख दुःख दोनों नहीं रहते अर्थात् अकेला सुख ही रह जाता है" इस वाक्य से आत्मा का सद्भाव समझा है। अतएव तुम्हारे यह संशय नहीं दूर हुआ कि "आत्मा है या नहीं ?"

हे देवों के प्यारे ! अब इस संशय को दूर करो। 'विज्ञानघन' इत्यादि वाक्य का यह अर्थ नहीं है जो तुमने समझा है।

इन्द्रभूति—तो इस वाक्य का ठीक अर्थ आप ही बताइए ?

भगवान्—विशिष्ट ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। जीव, विज्ञान के साथ अत्यन्त घन [निबिड़-एकमेक] हो रहा है इसलिए जीव को 'विज्ञानघन' कहते हैं। यह विज्ञानघन [जीव] भूतों से अर्थात् ज्ञेय रूप से परिणत घट पट आदि से उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह है कि घट पट आदि के होने पर ही जीव घट-ज्ञान पटज्ञान आदि रूप से परिणत होता है, और जब घट-पट आदि ज्ञान के विषय रूप से नष्ट होते हैं—अर्थात् अन्यम

नश्वरता आदि कारणों से वे ज्ञान के विषय नहीं रहते तो वह विज्ञानघन भी अपनी उस पर्याय रूप से नष्ट हो जाता है।

इन्द्रभूति—घट आदि भूतों से विज्ञानघन की उत्पत्ति होती है, यह आपने कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि पहले विज्ञानघन नहीं था।

भगवान्—नहीं गौतम, ऐसा नहीं। मान लो-देवदत्त के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र होने से पहले वह पिता नहीं था, अब पिता कहलाया। यद्यपि देवदत्त तो पहले से ही मौजूद था पर पिता रूप से [पिता पर्याय से] उसकी उत्पत्ति पुत्र होने पर हुई। ठीक ऐसी ही बात विज्ञानघन के विषय में है। विज्ञानघन [जीव] तो पहले से ही विद्यमान था पर घट का ज्ञान होने से पहले वह घट विषयक विज्ञानघन नहीं था, जब वह घट को जानने लगा तो घट विषयक विज्ञानघन रूप से पैदा हुआ।

इसी प्रकार जब घट का ज्ञान नहीं रहता है तब घट विषयक विज्ञानघन भी उसी रूप में नहीं रहता है। यही इस वेदवाक्य का असली अर्थ है।

इन्द्रभूति—तो क्या घट-ज्ञान का अभाव होने से आत्मा का सर्वथा अभाव हो जाता है?

भगवान्—नहीं। एक ही आत्मा तीन स्वभाव वाली है। अर्थात् उत्पत्ति, नाश और ध्रौव्य, ये तीन स्वभाव एक ही साथ प्रत्येक आत्मा में पाये जाते हैं। जब घट-ज्ञान घट को छोड़ कर पट को जानने लगता है तो घट-ज्ञान रूप से इसका नाश होता